Chapter आठ

नारायण-कवच

इस अध्याय में बताया गया है कि स्वर्ग के राजा इन्द्र ने किस प्रकार असुरों के सैनिकों पर विजय प्राप्त की। इसमें विष्णु-मंत्र कवच का भी वर्णन हुआ है।

इस कवच के द्वारा रक्षा प्राप्त करने के लिए पहले कुश को छूना चाहिए और आचमन-मंत्रों के द्वारा मुख धोना चाहिए। मौन धारण करते हुए आठ अक्षरों वाले विष्णु-मंत्र को शरीर के अंगों में और बारह अक्षरों वाले मंत्र को हाथों में धारण करना चाहिए। आठ अक्षर वाला मंत्र है—*ॐ नमो नारायणाय।* इस मंत्र को शरीर के अगले तथा पिछले सभी भागों में न्यस्त करना चाहिए। बारह अक्षरी मंत्र जो प्रणव ॐकार से प्रारम्भ होता है और इस प्रकार है—*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय*। हर अँगुली में एक-एक अक्षर धारण करे और उसके के पहले प्रणव ॐकार धारण करे। तत्पश्चात् ॐ वैष्णाय नम: का उच्चारण करें जो छ: अक्षरों वाला मंत्र है। फिर इस मंत्र के अक्षरों को क्रम से हृदय, सिर, दोनों भौंहों के बीच, शिखापर तथा आँखों के बीच धारण करे और

तब *मः अस्त्राय फट्* का जप करे और इस मंत्र से चारों ओर से अपनी रक्षा करे। *नादेवो देवम् अर्चयेत्*—अर्थात् जो देव पद तक ऊपर नहीं उठ पाया है, वह इस मंत्र का जप नहीं कर सकता। शास्त्र के इस आदेशानुसार मनुष्य को चाहिए कि वह गुण की दृष्टि से अपने को परमेश्वर से अभिन्न माने।

इस निवेदन के पश्चात् गरुड़देव पर आसीन अष्टभुजी भगवान् विष्णु की प्रार्थना करे। साथ ही मत्स्य, वामन, कूर्म, नृसिंह, वराह, परशुराम, रामचन्द्र (लक्ष्मण के अग्रज), नर-नारायण, दत्तात्रेय, कपिल, सनत्कुमार, हयग्रीव, नारददेव (भक्त के अवतार), धन्वन्तरि, ऋषभदेव, यज्ञ, बलराम, व्यासदेव, बुद्धदेव तथा केशव का ध्यान करे। वृन्दावन के स्वामी गोविन्द तथा चिदाकाश के स्वामी नारायण, मधुसूदन, त्रिधामा, माधव, हृषीकेश, पद्मनाभ, जनार्दन, दामोदर, विश्वेश्वर के साथ-साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण का भी ध्यान धरे। भगवान् के साक्षात् अंश, स्वांश तथा शक्त्यावेश अवतारों की स्तुति करने के बाद भगवान् नारायण के आयुधों, यथा सुदर्शन, गदा, शंख, खड्ग तथा तीर की भी स्तुति करे।

इस विधि को बताने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बताया कि वृत्रासुर के भाई विश्वरूप ने किस प्रकार नारायण-कवच की महिमा का वर्णन इन्द्र से किया।

श्रीराजोवाच

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान्रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥
भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; यया—जिससे (आध्यात्मिक-कवच से); गुप्तः—सुरक्षित; सहस्र-अक्षः—एक हजार नेत्रों वाला राजा इन्द्र; स-वाहान्—अपने वाहनों सहित; रिपु-सैनिकान्—शत्रुओं के सिपाही तथा सेना-नायक; क्रीडन् इव—खेल के समान; विनिर्जित्य—जीतकर; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों (उच्च, मध्य तथा निम्नलोक) का; बुभुजे—भोग किया; श्रियम्—ऐश्वर्य; भगवन्—हे मुनि; तत्—वह; मम—मुझको; आख्याहि—कृपया बताइये; वर्म—

मंत्र से निर्मित कवच; नारायण-आत्मकम्—नारायण की कृपा से युक्त; यथा—जिस प्रकार; आततायिनः—जो उसे मारना चाह रहे थे; शत्रून्—शत्रु; येन—जिससे; गुप्तः—रक्षित होकर; अजयत्—जीत लिया; मृधे—युद्ध में।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे प्रभो! कृपा करके मुझे वह विष्णु-मंत्र-कवच बताएँ जिससे राजा इन्द्र की रक्षा हो सकी और वह अपने शत्रुओं को उनके वाहनों सहित परास्त करके तीनों लोकों के ऐश्वर्य का उपभोग कर सका। कृपया मुझे वह नारायण-कवच बताएँ जिसके द्वारा इन्द्र ने युद्ध में अपने उन शत्रुओं को हराकर सफलता प्राप्त की जो उसे मारने का प्रयत्न कर रहे थे।

श्रीबादरायणिरुवाच
वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृतः—चुना गया; पुरोहितः—पुरोहित; त्वाष्ट्रः—त्वष्टा का पुत्र; महेन्द्राय—राजा इन्द्र के लिए; अनुपृच्छते—इन्द्र द्वारा पूछे जाने पर; नारायण-आख्यम्—नारायण-कवच नामक; वर्म—मंत्र से निर्मित सुरक्षा कवच; आह—उसने कहा; तत्—वह; इह—यह; एक-मनाः—ध्यानपूर्वक; शृणु—मुझसे सुनो।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—देवताओं के राजा इन्द्र ने देवताओं के द्वारा पुरोहित के रूप में नियुक्त विश्वरूप से नारायण-कवच के सम्बन्ध में पूछा। विश्वरूप द्वारा दिये गये उत्तर को तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

श्रीविश्वरूप उवाच
धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥
नारायणपरं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-विश्वरूपः उवाच—श्रीविश्वरूप ने कहा; धौत—पूरी तरह धोया हुआ; अङ्घ्रि—पाँव; पाणिः—हाथ; आचम्य—आचमन करके (नियत मंत्र का जप करने के बाद तीन बार जल चूसना); स-पवित्रः—कुश की बनी पवित्री या पैती (जिन्हें प्रत्येक हाथ की अँगुलियों में पहना जाता है); उदक्-मुखः—उत्तर की ओर मुख; कृत—करके; स्व-अङ्ग-कर-

न्यासः—शरीर के आठ भाग तथा हाथों के बारह भागों का मानसिक समर्पण (न्यास); मन्त्राभ्याम्—दो मंत्रों (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय तथा ॐ नमो नारायणाय) के साथ; वाक्-यतः—मौन रहकर; शुचिः—पवित्र होकर; नारायण-परम्—भगवान् नारायणमय; वर्म—कवच; सन्नह्येत्—धारण करे; भये—जब डर; आगते—आया है; पादयोः—दोनों पैरों पर; जानुनोः—दोनों घुटनों पर; ऊर्वोः—दोनों जाँघों पर; उदरे—पेट पर; हृदि—हृदय पर; अथ—इस प्रकार; उरसि—छाती पर; मुखे—मुँह में; शिरसि—सिर पर; आनुपूर्व्यात्—एक के बाद एक, क्रमशः; ओंकार-आदीनि—ऊँकार से प्रारम्भ करके; विन्यसेत्—रखे; ॐ—प्रणव; नमः—नमस्कार; नारायणाय—भगवान् नारायण को; इति—इस प्रकार; विपर्ययम्—विपरीत क्रम-से, उलटकर; अथ अपि—और भी; वा—अथवा।

विश्वरूप ने कहा—किसी प्रकार के भय का अवसर उपस्थित होने पर मनुष्य को चाहिए कि पहले अपने हाथ-पाँव धोये और तब यह मंत्र—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा / यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः / श्रीविष्णु श्रीविष्णु श्रीविष्णु—जप कर आचमन करे। तब उसे चाहिए कि कुश को छूकर शान्त भाव से उत्तर की ओर मुख करके बैठ जाये। पूर्णतया शुद्ध होने पर उसे चाहिए कि आठ शब्दों वाले मंत्र को अपने शरीर के दाहिनी ओर के आठ भागों में छुवाये और बारह शब्दों वाले मंत्र को हाथों में छुवाये। फिर नारायण-कवच से स्वयं को इस प्रकार बाँधे—पहले आठ शब्दों वाले मंत्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते हुए, प्रथम शब्द ॐ या प्रणव से प्रारम्भ करके अपने हाथों से अपने शरीर के आठों अंगों का स्पर्श करे—पहले दोनों पाँव छुए फिर क्रमशः घुटने, जाँघ, पेट, हृदय, छाती, मुँह तथा सिर को छुये। इसके बाद उलटे क्रम से मंत्र का जप करे अर्थात् अन्तिम शब्द 'य' से प्रारम्भ करे और अपने शरीर के अंगों को भी उलटे क्रम से छुए। ये दोनों विधियाँ क्रमशः उत्पत्ति-न्यास तथा संहार-न्यास कहलाती हैं।

करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया ।
प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥ ७॥

शब्दार्थ

कर-न्यासम्—करन्यास नामक कर्मकाण्ड, जिसमें अँगुलियों के लिए मंत्र के अक्षर होते है; ततः—तत्पश्चात्; कुर्यात्—करे; द्वादश-अक्षर—बारह अक्षरों वाला; विद्यया—मंत्र से; प्रणव-आदि—ऊँकार से प्रारम्भ करके; य-कार-अन्तम्—य अक्षर में अन्त होने तक; अङ्गुलि—अंगुलियों पर, तर्जनी से प्रारम्भ करके; अङ्गुष्ठ-पर्वसु—अँगूठों के पोरों (गाँठों) तक।

तब उसे चाहिए कि बारह अक्षरों वाले मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जप करे। इस मंत्र के बारह अक्षरों को दाहिने हाथ की तर्जनी से प्रारम्भ करके बाँये हाथ की तर्जनी

तक प्रत्येक अँगुली के छोर पर प्रत्येक अक्षर का उच्चारण करते हुए रखे। शेष चार अक्षरों को अँगूठों के पोरों पर रखे।

न्यसेद्धृदय ओंकारं विकारमनु मूर्धनि ।
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया न्यसेत् ॥ ८ ॥
वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ।
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ ९ ॥
सविसर्गं फडन्तं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ।
ॐ विष्णवे नम इति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

न्यसेत्—रखे; हृदये—हृदय पर; ओंकारम्—प्रणव, ॐकार; वि-कारम्—विष्णवे का 'वि' अक्षर; अनु—तत्पश्चात्; मूर्धनि—शिर के ऊपर; ष-कारम्—'ष' अक्षर; तु—तथा; भ्रुवोः मध्ये—दोनों भौंहों के बीच; ण-कारम्—'ण' अक्षर; शिखया—चोटी (शिखा) पर; न्यसेत्—रखे; वेकारम्—'वे' अक्षर; नेत्रयोः—दोनों नेत्रों के मध्य; युञ्ज्यात्—रखा जाये; न-कारम्—नमः शब्द का 'न' अक्षर; सर्व-सन्धिषु—सभी जोड़ों पर; म-कारम्—नमः शब्द का 'म' अक्षर; अस्त्रम्—हथियार; उद्दिश्य—ध्यान करते हुए; मन्त्र-मूर्तिः—मंत्र का स्वरूप; भवेत्—हो; बुधः—बुद्धिमान मनुष्य; स-विसर्गम्—विसर्ग (अः) सहित; फट्-अन्तम्—फट् ध्वनि से अन्त होने वाला; तत्—उस; सर्व-दिक्षु—सभी दिशाओं में; विनिर्दिशेत्—बाँध दे; ॐ—प्रणव; विष्णवे—भगवान् विष्णु को; नमः—नमस्कार; इति—इस प्रकार।

फिर उसे छः अक्षरों वाला मंत्र (ॐ विष्णवे नमः) जपना चाहिए। उसे ॐ को अपने हृदय पर, 'वि को शिरो भाग पर, 'ष' को भौहों के मध्य, 'ण' को चोटी पर तथा 'वे' को नेत्रों के मध्य रखना चाहिए। तब मंत्र जपकर्ता 'न' अक्षर को अपने शरीर के समस्त जोड़ों पर रखे और 'म' अक्षर को अस्त्र के रूप में ध्यान धरे। इस प्रकार वह साक्षात् मंत्र हो जायेगा। तत्पश्चात् उसे चाहिए कि अन्तिम शब्द 'म' में विसर्ग लगाकर 'मः अस्त्राय फट्' इस मंत्र का जप पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके सभी दिशाओं में करे। इस तरह सभी दिशाएँ इस मंत्र के सुरक्षा-कवच से बँध जायेंगी।

आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।
विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं; परमम्—परम को; ध्यायेत्—ध्यान धरे; ध्येयम्—ध्यान धरने योग्य; षट्-शक्तिभिः—छहों ऐश्वर्य से; युतम्—युक्त; विद्या—विद्या; तेजः—प्रभाव; तपः—तपस्या; मूर्तिम्—साक्षात्; इमम्—यह; मन्त्रम्—मंत्र को; उदाहरेत्—जप करे।

इस प्रकार जप कर लेने के पश्चात् मनुष्य को चाहिए कि वह छः ऐश्वर्यों से युक्त तथा ध्यातव्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने आपको गुण की दृष्टि से तदाकार समझे। तब उसे चाहिए कि वह निम्नलिखित नारायण-कवच अर्थात् भगवान् नारायण की सुरक्षा स्तुति का जप करे।

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां
न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप-
पाशान्दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ॐ—हे ईश्वर; हरिः—भगवान्; विदध्यात्—हमें प्रदान करें; मम—मेरा; सर्व-रक्षाम्—सभी ओर से सुरक्षा; न्यस्त—रखा हुआ; अङ्घ्रि-पद्मः—जिनके चरणकमल; पतगेन्द्र-पृष्ठे—समस्त पक्षियों के राजा गरुड़ की पीठ पर; दर—शंख; अरि—चक्र; चर्म—ढाल; असि—तलवार; गदा—गदा; इषु—तीर; चाप—धनुष; पाशान्—पाश, फंदा; दधानः—ग्रहण किये हुए; अष्ट—आठ; गुणः—सिद्धियों से युक्त; अष्ट—आठ; बाहुः—भुजाएँ।

परमेश्वर पक्षिराज गरुड़ की पीठ पर आसीन हैं और अपने चरण-कमल से उसका स्पर्श कर रहे हैं। वे अपने हाथों में शंख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, तीर, धनुष तथा पाश धारण किये हैं। ऐसे आठ भुजाओं वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सभी समय मेरी रक्षा करें। वे सर्वशक्तिमान हैं, क्योंकि वे आठ योग-शक्तियों (अणिमा, लघिमा इत्यादि) से समन्वित हैं।

तात्पर्य : ईश्वर से तादात्म्य का चिन्तन *अहंग्रहोपासना* कहलाती है। इस उपासना से कोई ईश्वर नहीं बन जाता, किन्तु गुणों की दृष्टि से वह अपने आप को परमेश्वर के समान मानता है। यह मानकर कि जिस प्रकार नदी का जल समुद्र के जल के समान है उसी प्रकार व्यक्ति की आत्मा परमात्मा का धर्मा सम है, उसे इस श्लोक में बताई विधि से परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए और उनकी शरण में जाना चाहिए। जीवात्माएँ सदैव परमेश्वर के अधीन हैं, फलतः उनका कर्तव्य है कि सभी परिस्थितियों में सुरक्षित रहने के लिए भगवान् से कृपा-याचना करें।

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति-
र्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्
त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जलेषु—जल में; माम्—मुझको; रक्षतु—बचाएं; मत्स्य-मूर्तिः—मत्स्य रूप में परमेश्वर; यादः-गणेभ्यः—हिंस्र जलजन्तुओं से; वरुणस्य—वरुण नामक देवता के; पाशात्—बंदी बनाने वाले फंदे से; स्थलेषु—स्थल पर; माया-वटु—वामन के रूप में ईश्वर का कृपामय रूप; वामनः—वामनदेव; अव्यात्—रक्षा करें; त्रिविक्रमः—त्रिविक्रम, जिनके तीन चरणों ने बलि के तीनों लोक नाप लिए; खे—आकाश में; अवतु—ईश्वर रक्षा करें; विश्वरूपः—विराट ब्रह्माण्ड रूप।

जल के भीतर वरुण देवता के पार्षद हिंस्र पशुओं से मत्स्यरूप धारण करने वाले भगवान् मेरी रक्षा करें। उन्होंने अपनी माया का विस्तार करके वामन का रूप धारण किया। वामन-देव स्थल पर मेरी रक्षा करें। उनका विराट स्वरूप, विश्वरूप, तीनों लोकों, को जीतने वाला है, आकाश में मेरी रक्षा करे।

तात्पर्य : इस मंत्र के द्वारा भगवान् के मत्स्य, वामन तथा विश्वरूप अवतारों से जल, स्थल तथा आकाश में सुरक्षा के हेतु प्रार्थना की जाती है।

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः
पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं
दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

दुर्गेषु—दुर्गम स्थानों में; अटवि—घने जंगल में; आजि-मुख-आदिषु—युद्धस्थल इत्यादि में; प्रभुः—परमेश्वर; पायात्—वे रक्षा करें; नृसिंहः—भगवान् नृसिंह देव; असुर-यूथप—असुरों के नायक, हिरण्यकशिपु का; अरिः—शत्रु; विमुञ्चतः—छोड़ा गया; यस्य—जिसका; महा-अट्ट-हासम्—महान् तथा भयानक अट्टहास; दिशः—समस्त दिशाएँ; विनेदुः—अनुगूँजित; न्यपतन्—गिर पड़े; च—तथा; गर्भाः—असुरों की पत्नियों के गर्भ।

हिरण्यकशिपु के शत्रु रूप में प्रकट होने वाले भगवान् नृसिंह देव समस्त दिशाओं में मेरी रक्षा करें। उनके घोर अट्टहास से समस्त दिशाएँ गूँज उठी थीं और असुरों की पत्नियों के गर्भपात हो गये थे। भगवान् जंगल तथा युद्धभूमि जैसे विकट स्थानों में कृपा करके मेरी

रक्षा करें।

रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः
स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे
सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रक्षतु—ईश्वर रक्षा करें; असौ—वह; मा—मुझको; अध्वनि—मार्ग में; यज्ञ-कल्पः—जिनकी पुष्टि यज्ञों के द्वारा की जाती है, यज्ञमूर्ति; स्व-दंष्ट्रया—अपनी ही दाढ़ों से; उन्नीत—उठाया जाकर; धरः—पृथ्वी लोक; वराहः—भगवान् वराह; रामः—भगवान् राम; अद्रि-कूटेषु—पर्वतों की चोटियों पर; अथ—तब; विप्रवासे—विदेशों में; स-लक्ष्मणः—अपने भाई लक्ष्मण सहित; अव्यात्—रक्षा करें; भरत-अग्रजः—महाराज भरत के ज्येष्ठ भ्राता; अस्मान्—हमारी।

परम अविनाशी भगवान् को यज्ञों के द्वारा जाना जाता है, इसीलिए वे यज्ञेश्वर कहलाते हैं। भगवान् वराह के रूप में अवतार लेकर उन्होंने पृथ्वी लोक को ब्रह्माण्ड के गर्त से जल में से निकालकर अपनी नुकी दाढ़ों में धारण किया। ऐसे भगवान् मार्ग में दुष्टों से मेरी रक्षा करें। परशुराम मेरी पर्वत शिखरों पर रक्षा करें और भरत के अग्रज भगवान् रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण सहित विदेशों में मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य : राम तीन हैं। परशुराम (जामदाग्न्य), दूसरे भगवान् रामचन्द्र तथा तीसरे श्रीबलराम। इस श्लोक में आगत *रामोऽद्रिकूटेष्व अथ* में श्री परशुराम का संकेत है। महाराज भरत या लक्ष्मण के भाई भगवान् रामचन्द्र हैं।

मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादा
न्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः
पायाद्गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; उग्र-धर्मात्—अनावश्यक धार्मिक नियमों से; अखिलात्—सभी प्रकार के कार्यों से; प्रमादात्—पागलपन में किये गये; नारायणः—भगवान् नारायण; पातु—रक्षा करें; नरः च—तथा नर; हासात्—वृथा गर्व से; दत्तः—दत्तात्रेय; तु—निस्सन्देह; अयोगात्—मिथ्या योग के मार्ग से; अथ—निस्सन्देह; योग-नाथः—समस्त योगशक्तियों के स्वामी,

योगेश्वर; पायात्—रक्षा करें; गुण-ईशः—समस्त आध्यात्मिक गुणों के स्वामी; कपिलः—श्रीकपिल; कर्म-बन्धात्—कर्मों के बन्धन से।

मिथ्या धर्मों के अनावश्यक पालन तथा प्रमादवश कर्तव्यच्युत होने से भगवान् नारायण मेरी रक्षा करें। नर-रूप में प्रकट भगवान् मुझे वृथा गर्व से बचाएँ। भक्तियोग के पालन से च्युत होने से योगेश्वर दत्तात्रेय मेरी रक्षा करें। समस्त श्रेष्ठ गुणों के स्वामी कपिल सकाम कर्म के भौतिक बन्धन से मेरी रक्षा करें।

सनत्कुमारोऽवतु कामदेवा-
द्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्
कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १७॥

शब्दार्थ

सनत्-कुमारः—परम ब्रह्मचारी सनत्कुमार; अवतु—रक्षा करें; काम-देवात्—कामदेव के चंगुल से अर्थात् कामवासनाओं से; हय-शीर्षा—हयग्रीव ईश्वर का अवतार जिसका मुख घोड़े के समान था; माम्—मुझको; पथि—मार्ग में; देव-हेलनात्—ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा परमेश्वर को नमस्कार न करने से; देवर्षि-वर्यः—देवर्षियों में श्रेष्ठ, नारद; पुरुष-अर्चन-अन्तरात्—विग्रह के पूजन में हुए अपराधों से; कूर्मः—भगवान् कूर्म (कच्छप); हरिः—भगवान् हरि; माम्—मुझको; निरयात्—नरक से; अशेषात्—असीम।

सनत्कुमार कामवासनाओं से मेरी रक्षा करें। जैसे ही मैं कोई शुभकार्य शुरू करूँ, श्रीहयग्रीव मेरी रक्षा करें जिससे मैं परमेश्वर को नमस्कार न करने का अपराधी न बनूँ। श्रीविग्रह की अर्चना में कोई अपराध न हो इसके लिए देवर्षि नारद मेरी रक्षा करें। भगवान् कूर्म असीम नरकलोक में गिरने से मुझे बचाएँ।

तात्पर्य : प्रत्येक प्राणी में कामेच्छाएँ प्रबल होती हैं और भक्ति मार्ग में ये ही सबसे अधिक बाधक हैं। अतः जो कामेच्छाओं के वश में बुरी तरह फंसे हैं उन्हें चाहिए कि परम ब्रह्मचारी भक्त सनत्कुमार की शरण ग्रहण करें। नारद मुनि अर्चना के पथप्रदर्शक हैं और *नारद-पंचरात्र* के रचयिता हैं जिसमें श्रीविग्रह की अर्चना की विधियाँ दी हुई हैं। चाहे कोई घर में श्रीविग्रह की पूजा करे या मन्दिर में, अर्चना में होने वाले बत्तीस प्रकार के अपराधों से बचने के लिए देवर्षि नारद के अनुग्रह की आकांक्षा करनी चाहिए। श्रीविग्रह-अर्चा में होने वाले इन अपराधों का उल्लेख

भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक पुस्तक में हुआ है।

धन्वन्तरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्
द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्
बलो गणात्क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धन्वन्तरिः—वैद्यराज धन्वन्तरि; भगवान्—श्रीभगवान्; पातु—मेरी रक्षा करें; अपथ्यात्—स्वास्थ्य के लिए हानिकर वस्तुओं, यथा मांस तथा मादक द्रव्यों से; द्वन्द्वात्—द्विधा से; भयात्—भय से; ऋषभः—श्रीऋषभदेव; निर्जित-आत्मा—मन तथा स्वयं को वश में रखने वाला; यज्ञः—यज्ञ; च—तथा; लोकात्—जनता के अपयश से; अवतात्—रक्षा करें; जन-अन्तात्—अन्य व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न भयानक परिस्थितियों से; बलः—भगवान् बलराम; गणात्—गणों से; क्रोध-वशात्—क्रुद्ध सर्पों से; अहीन्द्रः—शेष नाग के रूप में भगवान् बलराम।

श्रीभगवान् अपने धन्वन्तरि अवतार के रूप में मुझे अवांछित खाद्य पदार्थों से दूर रखें और शारीरिक रुग्णता से मेरी रक्षा करें। अपनी अन्तः तथा बाह्य इन्द्रियों को वश में करने वाले श्रीऋषभदेव सर्दी तथा गर्मी के द्वैत से उत्पन्न भय से मेरी रक्षा करें। भगवान् यज्ञ जनता से मिलने वाले अपयश तथा हानि से मेरी रक्षा करें और शेष-रूप भगवान् बलराम मुझे ईर्ष्यालु सर्पों से बचायें।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में रहने के लिए मनुष्य को अनेक विपत्तियों का सामना करना होता है, जिनका उल्लेख इस श्लोक में हुआ है। उदाहरणार्थ, अवांछित भोजन (कुपथ्य) से स्वास्थ्य को भय रहता है, अतः ऐसे भोजन का त्याग कर देना चाहिए। इस मामले में धन्वन्तरि हमारी रक्षा कर सकते हैं। चूँकि भगवान् विष्णु समस्त जीवात्माओं के परमात्मा हैं, अतः वे चाहें तो हमें अन्य जीवों के उपद्रवों, अर्थात् अधिभौतिक उपद्रवों से बचा सकते हैं। भगवान् बलराम शेष के अवतार हैं, अतः वे चाहें तो हमें क्रुद्ध सर्पों अथवा द्वेषपूर्ण व्यक्तियों से बचा सकते हैं, जो हमेशा घात लगाए बैठे रहते हैं।

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्

बुद्धस्तु पाषण्डगणप्रमादात् ।
कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु
धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

द्वैपायनः—वैदिक ज्ञान के दाता श्रील व्यासदेव; भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सर्वशक्तिमान अवतार; अप्रबोधात्—शास्त्र के अज्ञान से; बुद्धः तु—तथा भगवान् बुद्ध; पाषण्ड-गण—अबोध व्यक्तियों में मायाजाल फैलाने वाले नास्तिकों का; प्रमादात्—पागलपन से; कल्किः—केशव के अवतार भगवान् कल्कि; कलेः—इस कलियुग के; काल-मलात्—इस युग के अंधकार से; प्रपातु—रक्षा करें; धर्म-अवनाय—धर्म की रक्षा हेतु; उरु—महान्; कृत-अवतारः—जो अवतरित हुए।

वैदिक-ज्ञान से विहीन होने के कारण सभी प्रकार की अविद्या से श्रीभगवान् के अवतार व्यासदेव मेरी रक्षा करें। वेद विरुद्ध कर्मों से तथा आलस्य से, जिसके कारण प्रमादवश वेद ज्ञान तथा अनुष्ठान भूल जाते हैं, भगवान् बुद्धदेव मुझे बचाएँ। भगवान् कल्कि देव, जिनका अवतार धार्मिक नियमों की रक्षा के लिए हुआ, मुझे कलियुग की मलिनता से बचायें।

तात्पर्य : इस श्लोक में श्रीभगवान् के विभिन्न अवतारों का उल्लेख हुआ है, जो विभिन्न कार्यों के लिए प्रकट होते हैं। महामुनि श्रील व्यासदेव ने समस्त मानव समाज के कल्याण के लिए वेदों की रचना की। यदि कोई इस कलिकाल में भी अविद्या की प्रतिक्रिया से बचना चाहता है, तो उसे चाहिए कि श्रील व्यासदेव की रचनाएँ पढ़े। इनके नाम हैं—चारों वेद (*साम, यजुर, ऋग्* तथा *अथर्व*), १०८ उपनिषदें, *वेदान्त सूत्र* (ब्रह्मसूत्र), *महाभारत, श्रीमद्भागवत* महापुराण (ब्रह्मसूत्र पर व्यासदेव का भाष्य) तथा अन्य सत्रह *पुराण*। श्रील व्यासदेव की कृपा से ही हमारे पास दिव्य ज्ञान की इतनी कृतियाँ हैं जिनसे हम अपने को अविद्या के चंगुल से बचा सकते हैं।

जैसाकि श्रील जयदेव गोस्वामी ने अपने दशावतार स्तोत्र में बताया है, भगवान् बुद्ध ने वैदिक ज्ञान की निन्दा की।

निन्दसि यज्ञविधरेहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥

भगवान् बुद्ध का उद्देश्य जनता को पशु-बध के कुकृत्य से बचाना और विरीह पशुओं का बध होने से बचाना था। जब पाखंडी लोग वैदिक यज्ञों के बहाने पशुओं का बध कर रहे थे तो भगवान् बुद्ध ने कहा, ''यदि वेद पशु-वध की आज्ञा देते हैं, तो मैं वैदिक नियमों को नहीं मानता।'' इस प्रकार उन्होंने उन लोगों की रक्षा की जो वैदिक नियमों का पालन कर रहे थे। अत: मनुष्यों को चाहिए कि भगवान् बुद्ध की शरण में जाँय जिससे वे वैदिक आज्ञाओं का दुरुपयोग न करें।

कल्कि अवतार हिंस्र अवतार है, जो कलियुग में उत्पन्न नास्तिकों के विनाश के लिए है। अब कलियुग के इस प्रारम्भ काल में अनेक अधर्म व्याप्त हैं और ज्यों-ज्यों कलियुग आगे बढ़ेगा अनेकानेक छद्म धार्मिक सिद्धान्तों का प्रवेश होता जायेगा और लोग भगवान् कृष्ण द्वारा बताये गये उन असली धार्मिक नियमों को भूलते जायेंगे, जिन्हें उन्होंने कलियुग के प्रारम्भ होने के पूर्व ही कहा था। ये नियम थे भगवान् के चरणकमलों में आत्मसमर्पण। दुर्भाग्यवश कलियुग के कारण, मूर्ख व्यक्ति कृष्ण के चरणकमलों की शरण नहीं लेते हैं यहाँ तक कि अधिकांश ऐसे व्यक्ति भी जो अपने को वैदिक धर्म का पालन करने वाले बताते हैं, वास्तव में वैदिक नियमों के विरोधी हैं। आये दिन वे नये-नये धर्मों को गढ़ते रहते हैं और कहते रहते हैं कि मुक्ति का मार्ग यही है। नास्तिक मनुष्य प्राय: कहते हैं—*यत मत तत पथ*। इसके अनुसार मनुष्य समाज में सैकड़ों-हजारों मत-मतान्तर हैं जिनमें से प्रत्येक वैध है। दुष्टों की इस विचारधारा से वेदवर्णित धार्मिक नियमों की हत्या हो गई है और ज्यों-ज्यों कलियुग आगे बढ़ता जायेगा ऐसी विचारधाराएँ और बलवती होती जायेंगी। कलियुग के अन्तिम चरण में केशव का सबसे हिंस्र अवतार कल्किदेव के रूप में होगा जो समस्त नास्तिकों का वध करके केवल भगवान् के भक्तों की रक्षा करेगा।

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्
गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणु: ।
नारायण: प्राह्ण उदात्तशक्तिर्
मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणि: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; केशवः—भगवान् केशव; गदया—अपनी गदा से; प्रातः—प्रातःकाल; अव्यात्—रक्षा करें; गोविन्दः—भगवान् गोविन्द; आसङ्गवम्—दिन के चढ़े; आत्त-वेणुः—अपनी बाँसुरी लेकर; नारायणः—चतुर्भुज भगवान् नारायण; प्राह्णः—दोपहर के पूर्व; उदात्त-शक्तिः—विभिन्न प्रकार की शक्तियों को वश में रखने वाले; मध्यम्-दिने—दोपहर को; विष्णुः—भगवान् विष्णु; अरीन्द्र-पाणिः—शत्रुओं को मारने के लिए हाथ में चक्र धारण किये।

भगवान् केशव दिन के पहले चरण में अपनी गदा से तथा दिन के दूसरे चरण में अपनी बाँसुरी से गोविन्द मेरी रक्षा करें। सर्व शक्तियों से सम्पन्न भगवान् नारायण दिन के तीसरे चरण में और शत्रुओं का वध करने के लिए हाथ में चक्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णु दिन के चौथे चरण में मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य : वैदिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार दिन तथा रात को बारह-बारह घंटों में विभाजित न करके तीस घटिकाओं (प्रत्येक २४ मिनट की) में विभाजित किया जाता है। सामान्यत: प्रत्येक दिन तथा रात छ: समान चरणों में बँटी होती है जिनमें से प्रत्येक भाग पाँच घटिका का होता है। दिन तथा रात के इन विभिन्न विभागों में से प्रत्येक में भगवान् को भिन्न-भिन्न नामों से रक्षा के लिए सम्बोधित किया जा सकता है। मथुरा नामक पवित्र स्थान के स्वामी भगवान् केशव दिन के प्रथम चरण के तथा वृन्दावन के अधीक्षक गोविन्द दिन के दूसरे चरण के स्वामी हैं।

देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा
सायं त्रिधामावतु माधवो माम् ।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे
निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

देवः—भगवान्; अपराह्णे—दिन के पंचम चरण में; मधु-हा—मधुसूदन; उग्र-धन्वा—शार्ङ्ग नाम के प्रचण्ड धनुष को धारण करने वाले; सायम्—दिन के छठे चरण में, संध्या समय; त्रि-धामा—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर त्रिमूर्ति; अवतु—रक्षा करें; माधवः—माधव; माम्—मुझको; दोषे—रात के प्रथम भाग में; हृषीकेशः—श्रीहृषीकेश; उत—भी; अर्ध-रात्रे—रात्रि के दूसरे भाग अथवा अर्ध रात्रि में; निशीथे—रात्रि के तीसरे चरण में; एकः—अकेले; अवतु—रक्षा करें; पद्मनाभः—भगवान् पद्मनाभ।

असुरों के लिए भयावना धनुष धारण करने वाले भगवान् मधुसूदन दिन के पंचम चरण में मेरी रक्षा करें। संध्या समय ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर त्रिमूर्ति के रूप में प्रकट होकर

भगवान् माधव और रात्रि प्रारम्भ होने पर भगवान् हृषीकेश मेरी रक्षा करें। अर्ध रात्रि में (रात्रि के दूसरे तथा तीसरे चरण में) केवल भगवान् पद्मनाभ मेरी रक्षा करें।

श्रीवत्सधामापररात्र ईशः
प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते
विश्वेश्वरो भगवान्कालमूर्तिः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्रीवत्स-धामा—श्रीवत्स चिह्न धारण करने वाले भगवान्; अपर-रात्रे—रात्रि के चतुर्थ भाग में; ईशः—परमेश्वर; प्रत्यूषे—रात्रि के अन्त में; ईशः—परमेश्वर; असि-धरः—हाथ में तलवार धारण करने वाले; जनार्दनः—भगवान् जनार्दन; दामोदरः—भगवान् दामोदर; अव्यात्—वे रक्षा करें; अनुसन्ध्यम्—प्रत्येक संध्या को; प्रभाते—प्रातःकाल (राति के छठे भाग); विश्व-ईश्वरः—समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी; भगवान्—श्रीभगवान्; काल-मूर्तिः—साक्षात् काल।

वक्ष पर श्रीवत्स धारण करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अर्धरात्रि के पश्चात् से आकाश के गुलाबी होने तक मेरी रक्षा करें। खड्गधारी भगवान् जनार्दन रात्रि के समाप्त होने पर (रात्रि की अंतिम चार घटिकाओं में) मेरी रक्षा करें। भगवान् दामोदर बड़े भोर में तथा भगवान् विश्वेश्वर दिन तथा रात की संधियों के समय मेरी रक्षा करें।

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि
भ्रमत्समन्ताद्भगवत्प्रयुक्तम् ।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु
कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

चक्रम्—भगवान् का चक्र; युग-अन्त—युग के अन्त में; अनल—विध्वंसक अग्नि सदृश; तिग्म-नेमि—तीक्ष्ण किनारे; भ्रमत्—घूमते हुए; समन्तात्—चारों ओर; भगवत्-प्रयुक्तम्—भगवान् द्वारा लगाया गया; दन्दग्धि दन्दग्धि—पूरी तरह जला दें; अरि-सैन्यम्—हमारे शत्रुओं की सेना; आशु—शीघ्रता से; कक्षम्—सूखी घास; यथा—सदृश; वात-सखः—वायु का मित्र; हुताशः—धधकती आग।

श्रीभगवान् द्वारा चलाया जाने वाला तथा चारों दिशाओं में घूमने वाला तीखे किनारे वाला उनका चक्र युगान्त में प्रलय-अग्नि के समान विनाशकारी है। जिस प्रकार प्रातःकालीन मन्द पवन के सहयोग से धधकती अग्नि सूखी घास को भस्म कर देती है, उसी

प्रकार यह सदुर्शन चक्र हमारे शत्रुओं को जला कर भस्म कर दे।

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे
निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
कुष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-
भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २४॥

शब्दार्थ

गदे—श्रीभगवान् के हाथों में स्थित हे गदा; अशनि—वज्र के समान; स्पर्शन—जिसका स्पर्श; विस्फुलिङ्गे—अग्नि की चिनगारियाँ छोड़ता हुआ; निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि—कुचल दीजिये, कुचल दीजिये; अजित-प्रिया—श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय; असि—हो; कुष्माण्ड—कुष्माण्ड नामक निशाचर; वैनायक—वैनायक नामक प्रेत; यक्ष—यक्ष नामक भूत प्रेत; रक्षः—राक्षस; भूत—भूत नामक प्रेत; ग्रहान्—तथा ग्रह नामक दुष्ट असुर; चूर्णय—चूर-चूर कर दो; चूर्णय—चूर-चूर कर दो; अरीन्—मेरे शत्रुओं को।

हे श्रीभगवान् के हाथ की गदे! तुम वज्र के समान शक्तिशाली अग्नि की चिनगारियाँ उत्पन्न करो, तुम भगवान् की अत्यन्त प्रिय हो। मैं भी उन्हीं का दास हूँ, अतः कुष्माण्ड, वैनायक, यक्ष, राक्षस, भूत तथा ग्रह-गणों को कुचल देने में मेरी सहायता करो। कृपापूर्वक उन्हें चूर चूर कर दो।

त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ-
पिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो
भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥ २५॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; यातुधान—राक्षस; प्रमथ—प्रमथगण; प्रेत—प्रेतगण; मातृ—माताएँ; पिशाच—पिशाच; विप्र-ग्रह—ब्रह्म राक्षस; घोर-दृष्टीन्—अत्यन्त भयानक नेत्रों वाले; दरेन्द्र—हे भगवान् के हाथों के शंख, पांचजन्य; विद्रावय—भगा दें; कृष्ण-पूरितः—कृष्ण द्वारा फूँके जाने पर; भीम-स्वनः—अत्यन्त डरावना शब्द करते हुए; अरेः—शत्रु के; हृदयानि—हृदयों को; कम्पयन्—हिलाते हुए।

भगवान् के हाथों में धारण किए हुए हे शंखश्रेष्ठ, हे पांचजन्य! तुम भगवान् श्रीकृष्ण की श्वास से सदैव पूरित हो, अतः तुम ऐसी डरावनी ध्वनि उत्पन्न करो जिससे राक्षस, प्रमथ भूत, प्रेत, माताएँ, पिशाच तथा ब्रह्म राक्षस जैसे शत्रुओं के हृदय काँपने लगें।

त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्य-
मीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय
द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तिग्म-धार-असि-वर—हे तीक्ष्ण धारवाली श्रेष्ठ तलवार; अरि-सैन्यम्—शत्रु के सैनिकों को; ईश-प्रयुक्तः—श्रीभगवान् द्वारा काम में लाई जाने वाली; मम—मेरा; छिन्धि छिन्धि—खण्ड-खण्ड कर दो, खण्ड-खण्ड कर दो; चक्षूंषि—आँखें; चर्मन्—हे ढाल; शत-चन्द्र—एक सौ चन्द्रमाओं के समान तेजवान् मण्डल; छादय—ढक दो; द्विषाम्—मुझसे विद्वेष करने वालों को; अघोनाम्—पूर्ण पापी; हर—निकाल लो; पाप-चक्षुषाम्—पापपूर्ण आँखों वाले।

हे तलवारों में श्रेष्ठ तीक्ष्ण धार वाली तलवार! तुम श्रीभगवान् द्वारा काम में लायी जाती हो। कृपा करके तुम मेरे शत्रुओं के सैनिकों को खण्ड-खण्ड कर दो; कृपया उन्हें खण्ड-खण्ड कर दो। हे सैकड़ों चन्द्रमण्डल के समान वृत्ताकारों से अंकित तेजमान ढाल! पापी दुश्मनों की आँखें ढक दो और उनकी पापी आँखों को निकाल लो।

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत्केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽंहोभ्य एव च ॥ २७ ॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपानुकीर्तनात् ।
प्रयान्तु सङ्क्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; नः—हमारे; भयम्—भय; ग्रहेभ्यः—ग्रह नामक असुर से; अभूत्—था; केतुभ्यः—गिरने वाले तारों से; नृभ्यः—विद्वेषी मनुष्यों से; एव च—भी; सरीसृपेभ्यः—साँपों या बिच्छुओं से; दंष्ट्रिभ्यः—बाघों, भेड़ियों तथा असुरों जैसे तीक्ष्ण दाँतों वाले पशुओं से; भूतेभ्यः—भूतों से अथवा भौतिक तत्त्वों (क्षिति, जल, अग्नि आदि) से.); अंहोभ्यः—पापकर्मों से; एव च—भी; सर्वाणि एतानि—ये सब; भगवत्-नाम-रूप-अनुकीर्तनात्—श्रीभगवान् के दिव्य रूप, नाम, लक्षण तथा वैशिष्ट्य के कीर्तन से; प्रयान्तु—प्राप्त होने दो; सङ्क्षयम्—पूर्ण विनाश को; सद्यः—तुरन्त; ये—जो; नः—हमारा; श्रेयः-प्रतीपकाः—कल्याण में बाधक।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण तथा साजसामग्री का कीर्तन हमें अशुभ नक्षत्रों, केतुओं, विद्वेषी मनुष्यों, सर्पों, बिच्छुओं तथा बाघों-भेड़ियों जैसे पशुओं के प्रभाव से बचाये। वह प्रेतों से तथा क्षिति, जल, पावक, वायु, जैसे भौतिक तत्त्वों और तड़ित से तथा पूर्व पापों से हमारी रक्षा करे। हम अपने शुभ जीवन में इन बाधाओं से सदैव भयभीत रहते हैं, अतः हरे कृष्ण महामंत्र के जप से इन सबका पूर्ण विनाश हो।

गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

गरुडः—भगवान् विष्णु का वाहन, गरुड़; भगवान्—श्रीभगवान् के समान शक्तिशाली; स्तोत्र-स्तोभः—जिनकी स्तुति चुने हुए श्लोकों एवं गीतों से की जाती है; छन्दः-मयः—साक्षात् वेद; प्रभुः—भगवान्; रक्षतु—रक्षा करें; अशेष-कृच्छ्रेभ्यः—अनन्त दुखों से; विष्वक्सेनः—श्रीविष्वक्सेन; स्व-नामभिः—अपने पवित्र नाम से।

भगवान् विष्णु के वाहन श्रीगरुड़ श्रीभगवान् के समान शक्तिशाली होने के कारण सर्वपूज्य हैं। वे साक्षात् वेद हैं और चुने हुए श्लोकों से उनकी पूजा की जाती है। वे सभी भयानक स्थितियों में हमारी रक्षा करें। भगवान् विष्वक्सेन अपने पवित्र नामों के द्वारा हमें सभी संकटों से बचायें।

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान्पान्तु पार्षदभूषणाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सर्व-आपद्भ्यः—सभी प्रकार की विपत्तियों से; हरेः—श्रीभगवान् का; नाम—पवित्र नाम; रूप—दिव्य रूप; यान—वाहन; आयुधानि—तथा सभी शस्त्रास्त्र; नः—हमारी; बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रिय—इन्द्रिय; मनः—मन; प्राणान्—प्राण वायु; पान्तु—रक्षा तथा पालन करें; पार्षद-भूषणाः—आभूषण तुल्य पार्षद गण।

श्रीभगवान् के पवित्र नाम, दिव्य रूप, वाहन तथा आयुध, जो उनके पार्षदों के समान उनकी शोभा बढ़ाने वाले हैं, हमारी बुद्धि, इन्द्रियों, मन तथा प्राण की सभी प्रकार के संकटों से रक्षा करें।

तात्पर्य : दिव्य रूप भगवान् के अनेक पार्षद हैं जिनमें उनके आयुध तथा वाहन भी सम्मिलित हैं। आध्यात्मिक जगत में कुछ भी भौतिक नहीं है। तलवार, धनुष, गदा, चक्र तथा भगवान् के शरीर को अलंकृत करने वाली प्रत्येक वस्तु आध्यात्मिक जीवनी शक्ति है। इसीलिए भगवान् को 'अद्वय-ज्ञान' कहा गया है, जिससे यह सूचित होता है कि उनमें तथा उनके नाम, रूप, गुण, आयुध इत्यादि में कोई अन्तर नहीं है। उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु आध्यात्मिक अस्तित्त्व की श्रेणी में है। वे विभिन्न रूपों में भगवान् की सेवा में काम आती हैं।

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; हि—निस्सन्देह; भगवान्—श्रीभगवान्; एव—निश्चय ही; वस्तुतः—अन्तिम रूप से; सत्—प्रकट; असत्—अप्रकट; च—तथा; यत्—जो भी; सत्येन—सत्य से; अनेन—यह; नः—हमारे; सर्वे—सभी; यान्तु—चले जाँय, दूर हों; नाशम्—संहार को; उपद्रवाः—उपद्रव।

यह सूक्ष्म तथा स्थूल दृश्य जगत भौतिक है, तो भी यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न है, क्योंकि वस्तुतः वे ही समस्त कारणों के कारण हैं। कारण तथा कार्य वास्तव में एक ही हैं, क्योंकि कार्य में कारण विद्यमान रहता है। अतः परम सत्य श्रीभगवान् हमारे समस्त संकटों को अपने किसी भी शक्तिशाली अंग से नष्ट कर सकते हैं।

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; ऐकात्म्य—विभिन्न रूपों में प्रकट एकरूपता; अनुभावानाम्—विचारकों के; विकल्प-रहितः—भेद रहित; स्वयम्—स्वयं; भूषण—अलंकरण; आयुध—शस्त्रास्त्र; लिङ्ग-आख्याः—गुण तथा विभिन्न नाम; धत्ते—धारण करता है; शक्तीः—ऐश्वर्य, प्रभाव, शक्ति, ज्ञान, सौंदर्य तथा त्याग जैसी शक्तियाँ; स्व-मायया—अपनी आत्मशक्ति के प्रसार से; तेन एव—उसके द्वारा; सत्य-मानेन—वास्तविक ज्ञान; सर्व-ज्ञः—सर्वज्ञाता; भगवान्—श्रीभगवान्; हरिः—जीवात्माओं के मोह को हरने वाले; पातु—रक्षा करें; सर्वैः—सभी; स्व-रूपैः—अपने रूपों से; नः—हमको; सदा—सदैव; सर्वत्र—सभी जगहों पर; सर्व-गः—सर्वव्यापी।

श्रीभगवान्, जीवात्माएँ, भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति तथा सम्पूर्ण सृष्टि—वे सभी व्यष्टियाँ हैं। अन्ततोगत्वा ये सब मिलकर परब्रह्म का निर्माण करती हैं। अतः जो आत्मज्ञानी हैं, वे भिन्नता में एकता देखते हैं। ऐसे बढ़ेचढ़े पुरुषों के लिए भगवान् के शारीरिक अलंकरण, उनके नाम, उनका यश, उनके लक्षण एवं रूप तथा आयुध उनकी शक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके समुन्नत आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार विभिन्न रूपों में प्रकट होने वाले सर्वज्ञ भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं। वे सदैव सभी विपदाओं से सर्वत्र हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत पुरुष जानता है, कि एकमात्र श्रीभगवान् का ही अस्तित्त्व है। *भगवद्गीता* (९.४) में भी इसकी पुष्टि हुई है जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—*मया ततम् इदं सर्वम्*—इससे सूचित होता है कि प्रत्येक दिखने वाली वस्तु उनकी शक्ति का प्रसार है। *विष्णु पुराण* (१.२२.५२) में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है—

एकदेश स्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।

परस्य ब्रह्मण: शक्तिस्तथेदम् अखिलं जगत्॥

''जिस प्रकार अग्नि एक स्थान में रहकर अपने प्रकाश तथा ताप को सर्वत्र फैलाती है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् यद्यपि वैकुण्ठ धाम में स्थित हैं, किन्तु उनका विस्तार भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत में विभिन्न शक्तियों के द्वारा होता है।'' चूँकि कार्य-कारण परमेश्वर ही हैं, अत: उनमें कोई अन्तर नहीं होता। फलत: श्रीभगवान् के अलंकरण तथा आयुध उनकी आत्म-शक्ति के प्रसार होने के कारण उनसे अभिन्न हैं। भगवान् तथा उनकी विविध रूप से प्रस्तुत शक्तियों में कोई अन्तर नहीं है। *पद्मपुराण* से भी इसकी पुष्टि होती है—

नाम चिन्तामणि: कृष्णश्चैतन्यरसविग्रह:।

पूर्ण: शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान् नामनामिनो:॥

भगवान् का पवित्र नाम पूर्णतया भगवान् के समरूप है। पूर्ण शब्द का अर्थ है 'पूरा'। जिस प्रकार भगवान् सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ हैं, उसी तरह भगवान् के नाम, रूप, गुण, साज-सामग्री तथा उनकी प्रत्येक वस्तु पूर्ण शुद्ध, नित्य तथा निष्कलुष है। भगवान् के आभूषणों एवं वाहनों की स्तुति मिथ्या नहीं है, क्योंकि वे भगवान् के ही समान उत्तम हैं। भगवान् सर्वव्यापी हैं, अत: वे घट-घट वासी हैं और प्रत्येक वस्तु उनमें स्थित है। अत: भगवान् के आयुधों या आभूषणों की पूजा में भी वही शक्ति है, जो भगवान् की पूजा में। मायावादी या तो भगवान् के रूप को अस्वीकार करते हैं या कहते हैं कि वह माया या छद्म है, किन्तु भली-भाँति विचार करने पर पता लगेगा कि यह कथन स्वीकार्य नहीं है। यद्यपि भगवान् का आदि रूप तथा उनका निराकार अंश

एक हैं, किन्तु भगवान् अपने रूप, गुण तथा धाम को शाश्वत रूप से बनाये रखते हैं। इसलिए इस स्तुति—*पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः*—में कहा गया है कि विभिन्न रूपों में सर्वत्र व्याप्त भगवान् हमारी हर जगह रक्षा करें। भगवान् सदैव ही सर्वत्र अपने नाम, रूप, गुण, लक्षण तथा साज सामग्री से विद्यमान रहते हैं और इन सबों में भक्तों की रक्षा करने की समान शक्ति रहती है। श्रील मध्वाचार्य ने इस की व्याख्या इस प्रकार से की है—

एक एव परो विष्णुर्भूषाहेति ध्वजेष्वजः।

तत्तच्छक्तिप्रदत्वेन स्वयमेव व्यवस्थितः।

सत्येनानेन मां देवः पातु सर्वेश्वरो हरिः॥

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्ता-
दन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन
स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

विदिक्षु—सभी कोनों में; दिक्षु—समस्त दिशाओं में (पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण) में; ऊर्ध्वम्—ऊपर; अधः—नीचे; समन्तात्—चारों ओर; अन्तः—भीतर; बहिः—बाहर; भगवान्—श्रीभगवान्; नारसिंहः—नृसिंह(आधे सिंह तथा आधे मनुष्य) देव के रूप में; प्रहापयन्—पूर्णतया विनष्ट करते हुए; लोक-भयम्—पशु, विष, आयुध, जल, वायु, अग्नि इत्यादि से उत्पन्न भय; स्वनेन—अपनी गर्जना से अथवा अपने भक्त प्रह्लाद महाराज के स्वर से; स्व-तेजसा—अपने निजी तेज से; ग्रस्त—आच्छादित; समस्त—अन्य सभी; तेजाः—प्रभाव।

प्रह्लाद महाराज ने भगवान् नृसिंहदेव के पवित्र नाम का उच्चस्वर से जप किया। अपने भक्त प्रह्लाद महाराज के लिए गर्जना करने वाले श्रीनृसिंहदेव! आप उन संकटों के भय से हमारी रक्षा करें जो विष, आयुध, जल, अग्नि, वायु इत्यादि के द्वारा समस्त दिशाओं में महा-भटों के द्वारा फैलाया जा चुका है। हे भगवान्! आप अपने दिव्य प्रभाव से इनके प्रभाव को आच्छादित कर लें। नृसिंहदेव समस्त दिशि-दिशाओं में, ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर हमारी रक्षा करें।

मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यसेऽञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

मघवन्—हे इन्द्र; इदम्—यह; आख्यातम्—कह सुनाया; वर्म—रहस्यमय कवच; नारायण-आत्मकम्—नारायण से सम्बन्धित; विजेष्यसे—तुम जीतोगे; अञ्जसा—सरलतापूर्वक; येन—जिससे; दंशितः—सुरक्षित होकर; असुर-यूथपान्—असुरों के मुखियों को।

विश्वरूप ने आगे कहा—हे इन्द्र! मैंने तुमसे नारायण के इस गुप्त कवच को कह सुनाया। तुम इस सुरक्षात्यक कवच को धारण करके असुरों के नायकों को जीतने में निश्चय ही समर्थ होगे।

एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; धारयमाणः—धारण करने वाला व्यक्ति; तु—लेकिन; यम् यम्—जिस किसी को; पश्यति—देखता है; चक्षुषा—अपनी आँखों से; पदा—अपने पैरों से; वा—अथवा; संस्पृशेत्—छूता है; सद्यः—तुरन्त; साध्वसात्—समस्त भय से; सः—वह; विमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

यदि कोई इस कवच को धारण करता है, तो वह जिस किसी को अपने नेत्रों से देखता है, अथवा पैरों से छू देता है, वह तुरन्त ही उपर्युक्त समस्त संकटों से विमुक्त हो जाता है।

न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याध्यादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; कुतश्चित्—कहीं से; भयम्—भय; तस्य—उसका; विद्याम्—यह रहस्यमय स्तोत्र; धारयतः—प्रयोग करते हुए; भवेत्—प्रकट हो; राज—सरकार से; दस्यु—चोर-उचक्कों से; ग्रह-आदिभ्यः—असुरों आदि से; व्याधि-आदिभ्यः—रोगों इत्यादि से; च—भी; कर्हिचित्—किसी समय।

नारायण-कवच नामक यह स्तोत्र नारायण के दिव्यरूप से सम्बद्ध सूक्ष्म ज्ञान से युक्त है। जो इस स्तोत्र का प्रयोग करता है, वह सरकार, लुटेरों, दुष्ट असुरों या किसी प्रकार के रोग द्वारा न तो विचलित किया जाता है न ही सताया जाता है।

इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन्द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इमाम्—यह; विद्याम्—स्तोत्र; पुरा—प्राचीन काल में; कश्चित्—कोई; कौशिकः—कौशिक; धारयन्—प्रयोग करके; द्विजः—ब्राह्मण; योग-धारणया—योग बल से; स्व-अङ्गम्—अपना शरीर; जहौ—त्याग दिया; सः—वह; मरु-धन्वनि—मरुस्थल में।

हे देवेन्द्र! प्राचीन काल में कौशिक नाम के एक ब्राह्मण ने इस कवच का प्रयोग किया और उसने अपने योगबल से मरुभूमि में जान बूझ कर अपना शरीर त्याग दिया।

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके मृतशरीर के; उपरि—ऊपर; विमानेन—विमान से; गन्धर्व-पतिः—गन्धर्व लोक के राजा चित्ररथ; एकदा—एक बार; ययौ—गया; चित्ररथः—चित्ररथ; स्त्रीभिः—अनेक सुन्दर स्त्रियों द्वारा; वृतः—घिरा हुआ; यत्र—जहाँ; द्विज-क्षयः—ब्राह्मण कौशिक मरा था।

एक बार अनेक सुन्दरियों से घिरा, गन्धर्वलोक का राजा चित्ररथ अपने विमान से उस स्थान के ऊपर से निकला, जहाँ वह ब्राह्मण मरा था और उसका मृत शरीर पड़ा हुआ था।

गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ।
स वालिखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

गगनात्—आकाश से; न्यपतत्—गिरा; सद्यः—अचानक; स-विमानः—अपने विमान समेत; हि—निश्चय ही; अवाक्-शिराः—नीचे की ओर सिर किये; सः—वह; वालिखिल्य—वालिखिल्य नामक मुनियों के; वचनात्—उपदेश से; अस्थीनि—सभी अस्थियाँ; आदाय—लाकर; विस्मितः—आश्चर्यचकित; प्रास्य—फेंक कर; प्राची-सरस्वत्याम्—पूर्व की ओर बहने वाली सरस्वती नदी में; स्नात्वा—उस नदी में नहाकर; धाम—धाम को; स्वम्—अपने; अन्वगात्—लौट गया।

अचानक चित्ररथ सिर के बल अपने विमान सहित नीचे गिरने पर विवश कर दिया गया। उसे आश्चर्य हुआ। वालिखिल्य मुनियों ने उसे आदेश दिया कि उस ब्राह्मण की अस्थियाँ वह निकट ही स्थित सरस्वती नदी में प्रवाहित कर दे। उसे ऐसा ही करना पड़ा तथा अपने धाम लौटने के पूर्व नदी में स्नान करना पड़ा।

श्रीशुक उवाच
य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; यः—जो कोई; इदम्—यह; शृणुयात्—सुनेगा; काले—भय के समय; यः—जो कोई; धारयति—इस स्तोत्र का प्रयोग करता है; च—भी; आदृतः—श्रद्धा तथा आदर के साथ; तम्—उसको; नमस्यन्ति—नमस्कार करते हैं; भूतानि—सभी जीव; मुच्यते—छूट जाते हैं; सर्वतः—समस्त; भयात्—भयों से।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा, हे महाराज परीक्षित! जो कोई इस कवच का उपयोग करता है अथवा इसके विषय में श्रद्धा तथा सम्मानपूर्वक श्रवण करता है, वह भौतिक संसार की स्थितियों से उत्पन्न समस्त प्रकार के भयों से तुरन्त मुक्त हो जाता है और सभी जीवों द्वारा पूजा जाता है।

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

एताम्—यह; विद्याम्—स्तोत्र; अधिगतः—प्राप्त; विश्वरूपात्—विश्वरूप ब्राह्मण से; शत-क्रतुः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; त्रैलोक्य-लक्ष्मीम्—तीनों लोकों का समस्त ऐश्वर्य; बुभुजे—भोग किया; विनिर्जित्य—जीतकर; मृधे—युद्ध में; असुरान्—सभी असुरों को।

एक सौ यज्ञों को करने वाले राजा इन्द्र ने इस रक्षा-स्तोत्र को विश्वरूप से प्राप्त किया। असुरों को जीत लेने के बाद उसने तीनों लोकों के सभी ऐश्वर्य का भोग किया।

तात्पर्य : विश्वरूप द्वारा स्वर्ग के राजा इन्द्र को प्रदत्त यह गुह्य मंत्रमय कवच इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि इन्द्र असुरों को जीत सका और अबाध रूप से तीनों लोकों का ऐश्वर्य भोग सका। इस प्रसंग में मध्वाचार्य का कहना है—

विद्याः कर्माणि च सदा गुरोः प्राप्ताः फलप्रदाः ।

अन्यथा नैव फलदाः प्रसन्नोक्ताः फलप्रदाः ॥

मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु से ही सभी प्रकार के मंत्र ग्रहण करे; अन्यथा मंत्र सफल

नहीं होता। *भगवद्गीता* (४.३४) में भी ऐसा ही कहा गया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

''सद्गुरु के शरणागत होकर दण्डवत् प्रणाम्, विनम्र जिज्ञासा तथा निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उस तत्त्व को जाने। तत्त्व को जानने वाले आत्मज्ञानी महापुरुष तेरे लिए ज्ञान का उपदेश दे सकते हैं'' सभी प्रकार के मंत्रों को वैध गुरु से ग्रहण करना चाहिए और शिष्यों को चाहिए कि गुरु के चरणकमलों की शरण में जाकर उसे सभी प्रकार से प्रसन्न रखें। *पद्मपुराण* में यह भी कहा गया है—*सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।* शिष्य परम्पराएँ या सम्प्रदाय चार प्रकार के हैं—ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय तथा कुमार सम्प्रदाय। यदि कोई आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रसर होना चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह इन प्रामाणिक सम्प्रदायों में से किसी से मंत्र ग्रहण करे अन्यथा वह आध्यात्मिक जीवन में कभी अग्रसर नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत ''नारायण-कवच'' नामक नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।